International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 6.340, Volume 03, No. 02(II), April - June, 2021, pp.123-131

मीडिया की चुनौतियां और साहित्य व अन्य ललित कलाएं

मुकेश पचौरी*

प्रस्तावना

संचार क्रान्ति के बाद मीडिया ने पहला काम यहीं किया है कि हदें तोड़ दीं है और दूसरा काम इसी के बराबर, वह है हदें बनाने का और उसके साथ ही बढ़ाने का। यह तीनों बातें परस्पर विरोधाभासी हैं, मगर आज के दौर में तीनों एक बड़ा सच हैं,जिसे लगभग हर विद्वान् स्वीकारता है।

आज संचार क्रान्ति के कारण हर कला और कलाकार को एक बड़ी आज़ादी मिली है ।यह आज़ादी है खुद को विश्व के खुले मंच पर ,दुनिया के सामने रखने की। आज हर वह व्यक्ति जिसके पास एक अदद स्मार्टफोन है, अपना चैनल बनाकर यू ट्यूब या अन्य प्लेटफॉर्म्स पर अपने हुनर की अभिव्यक्ति दे सकता है। सदियों से मंचों की अपनी राजनीति रही है। किसको कितनी और कब जगह देनी है, इसे क़ला और साहित्य की दुनिया के सयाने–सरपंचों के इशारों पर ही तय किया जाता रहा है। लेकिन आज वह हदें टूट गयीं है।

किसी महोत्सव ,किसी टीवी चैनल के कार्यक्रम की फेहरिश्त में भले ही आपको पीछे धकेल दिया जाए मगर इन्टरनेट की दुनिया में अपना मंच सजाने के लिए आपको कोई न किराए के ज़रुरत है न आकाओं की पैरवी की। इस संचार क्रान्ति में हदें टूटीं हैं लेकिन साथ ही हदें बढ़ीं भी हैं। आज कलाकार अपने वीडियोज और सोशल साइट्स पर अपने अकाउंट के ज़रिये किसी दूसरे शहर जाने के किराए मात्र की कीमत पर, विज्ञापन देकर अपनी कला और हुनर के विविध आयामों को हजारों हमख्याल लोगों तक पहुंचाकर उनकी राय ले सकता है। और मंचों की सीमा ये है वह एक समय सजते हैं और खामोश हो जाते हैं। मगर संचार के सीने पर सवार ये ई मंच कभी अपना शटर नहीं गिराते। और हमेशा या जब तक आप चाहें ये सारी दुनिया के लिए उपलब्ध रहते हैं। इससे कला और कलाकारों के अपने प्रभाव क्षेत्र का दायरा न केवल बढ़ता है बल्कि उसमें निरंतर गुणात्मक परिवर्तन और विस्तार होता रहता है।

मीडिया का एक और रूप है वह है आज का सोशल मीडिया या न्यू मीडिया है। इसने एक मायने में क्रान्ति भी की है और अटपटे हालत भी पैदा कर दिए हैं। इसमें फेसबुक, यू ट्यूब व्हाटसएप, इन्स्टाग्राम जैसे सोशल मीडिया नेटवर्क हैं जिन्होंने हर आम ओ ख़ास के लिए एक उन्मुक्त मंच प्रदान किया है। इस आज़ादी के अपने मायने हैं। इसने बहुत सारे बीच के ज़रियों या कहें कि पुलों को तोड़कर लेखक को सीधे पुलकित करने का काम किया है। इसमें जहां एक तरफ सोशल मीडिया है वहीं दूसरी तरफ वर्डप्रेस, ब्लोग्स की दुनिया है। गूगल पर न्यू मीडिया शब्द की एंट्री करते ही परिणाम के रूप में 18,67,00,00,000 (0.59 seconds) या एक सेकंड से कम समय में 18 अरब, 67 करोड़ परिणाम बताते हैं कि यह आज के दौर में कोई नया शब्द नहीं है। इसमें इन्टरनेट के माध्यम से प्रसारित सूचना तंत्र के तमाम मंच है जहां जाकर पढ़ा भी जा सकता है और लिखा भी जा सकता है।

अपनी रचनाओं को अपनी शर्तों पर अपनी तरह से प्रकाशित भी किया जा सकता है और बहुत सी जगह पहुंचाया भी जा सकता है। इस जगत का नियंता व्यक्ति /लेखक स्वयं है। यहाँ संपादक /प्रकाशक मंच की नहीं सिर्फ अकाउंट होल्डर की मर्जी चलती है यहाँ एक अलग तरह का लोकतंत्र है जिसके अपने फायदे नुक्सान हैं।

* एसोसियेट प्रोफ़ेसर (हिन्दी), एमबीसी.राज.स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय, बाड़मेर, राजस्थान।

इस दुनिया का नागरिक बनने के लिए कोई विशेष योग्यता नहीं बस कुछ औपचारिकताएं होतीं हैं जिन्हें पूरा करना होता है। और इसके साथ ही आप सारी दुनिया के सम्मुख अपने आप को खोल के रख सकते हैं। साहित्य की निगाह से यह एक बेहद बड़ी क्रान्ति थी जहां रचनाकार की निर्भरता ख़त्म हो रही थी। लेखक और पाठक के बीच की जितनी रुकावटें या बैरियर्स थे वह सब बेमानी हो गए। और रचनाएं सहज सरल रूप से सीधे कहीं भी पहुंचाईं जा सकतीं थीं और कमाल तो ये कि इसके लिए किसी कीमत को चुकाने की आवश्यकता भी नहीं थी।

अगर इससे पूर्व के परिदृश्य पर गौर करें तो अखबार हों या पत्रिकाएं अथवा टी.वी.लेकिन इनमें अपनी रचनाओं के प्रकाशन प्रसारण के लिए एक प्रक्रिया से गुज़रना होता था। एक संपादक मंडल होता था उसके पास अनगिनत रचनाएं आतीं थीं जहां अपने प्रिय अथवा प्रभावशाली लेखन के आधार पर रचनाओं का चयन और प्रकाशन और प्रसारण होता था । इस प्रक्रिया में जितने लेखकों की रचनाएं प्रकाशित होतीं थीं उससे कहीं ज़्यादा लेखको की रचनाओं को वापस लौटा दिया जाता था। और इस फेहरिश्त में बड़े बड़े लेखक भी शामिल है जिनकी रचनाओं को अस्वीकार कर दिया अथवा लौटा दिया गया। न्यू मीडिया किसी प्रकाशन की नहीं पर अपनी वाल/ब्लॉग पर लिखने की आजादी देती है और आपके मित्रों –प्रशंसकों के सम्मुख एक साथ रखने का अवसर देती है ।पाठक अथवा लेखक समुदाय कहीं किसी देश में हो मगर रचना ब्लॉग पर प्रकाशित होने के साथ ही कहीं भी देखी जा सकती है। इस आज़ादी ने लेखक ही नहीं रचनाओं को भी एक खुला आसमान दिया । इस खुलेपन का सबसे ज्यादा फायदा उन तमाम नवोदित लेखकों भी मिला जिन्हें अपने रचना कौशल को दिखलाने का मंच मिला। अब जो खुले मंचों के जो नुक्सान होते हैं यहाँ भी वह सारे अनर्गल रचनाकार सीना तानकर मंच पर आ गए। इस लोकतंत्र में कई बार लगता है जनता ही जनार्दन है क्योंकि आखिर तो उसी की पसंद राज़ करती है। लेकिन यहाँ भी हमारे लोकतंत्र जैसी ही स्थितियां है जहाँ लाइक्स ,व्यूज सीन से आकलन होता है और यह मैनेज्ड होता है। साहित्यकारों की जमात इसके काफी खिलाफ नज़र आती है ख़ास तौर पर वरिष्ठ और वयोवृद्ध पीढी। इंडिया टुडे का 15 वर्षों बाद जो साहित्य वार्षिकी प्रकाशित हुआ तो विमर्श का मुद्दा यही था कि इस न्यू मीडिया और साहित्य का क्या रिश्ता है। "भाषा का उपभोक्ता और लापरवाह रूप मीडिया में हमें पढने सुनने को मिलता है। कविता में अथवा साहित्य में हम उससे कुछ भिन्न मंतव्य वाली भाषा पाना चाहते हैं लेकिन मीडिया की भाषा भी ज़रूरी है क्योंकि वह मनुष्य समाज के दैनिक इतिहास से टकराती है। अखबार को मैं दैनिक इतिहास मानता हूँ। इस तरह हमारी प्रत्येक तारीख इतिहास में जाने का उपक्रम रचती है। लेकिन मीडिया भाषा का उत्पत्ति स्थल नहीं उपभोग स्थल है वह कविता कहाने नाटक और निबंध आदि सभी रचनात्मक विधाओं का कबाडखाना है। यहाँ साहित्य रचनात्मक भाषा का उत्पत्ति स्थल है । इसलिए मीडिया कभी प्रतिमान नहीं बन सकता। वह सूचनाओं का शमशान और कब्रगाह भी नहीं है, बल्कि मीडिया समाज का दैनिक चेहरा है।"

कविता स्वयं में अभिव्यक्ति का साधन भी है और साध्य भी, लक्ष्य भी है और उद्देश्य भी, आत्मा भी है और चेतना भी। कविता अनुभूति भी है और अनुभव भी। कविता आत्म संवाद के साथ साथ जीवन पद्धति की आतंरिक खबर भी है। कविता खबर भी है और खबर का कारण भी। कविता के शिल्प और गल्प में बहुत से मानवीय संवेदनात्मक आवेग गुंथे हुए हैं। जो किसी अभिज्ञान तक जाना चाहते हैं। वे अभिज्ञान जो हमारी क्षीण होती अभिव्यक्तियों का नतीज़ा हैं। "कविता व्यक्ति को भी सामाज से कमतर नहीं आंकती। अच्छी कविता के लिए त्याज्य कुछ भी नहीं है। अच्छी कविता अच्छाई के पीछे भी भागती है और बुराई का पीछा नहीं छोडती। अच्छी कविता भाषा में से अभाषा और विभाषा को पकड़ने की कोशिश करती है। अच्छी कविता बने बनाए समुद्र को संभालने की अपेक्षा बूंदों को संजोने और संभालने में ज़्यादा मशगूल और तत्पर दिखाई देती है। अच्छी कविता के लिए हिमालय के मुकाबले ठीकरा भी त्याज्य नहीं है। " कहने की ज़रुरत नहीं कविता और समाज में बड़े के पैमाने अलग अलग हैं। समाज की निगाह में जो बड़ा है और साहित्य या कविता जिसे बड़ा मानती है उसमें बड़ा फरक है। दरअसल दोनों की प्राथमिकताएं अलग अलग हैं। और एक मायने में कविता समाज में संतुलन पैदा करने की कोशिश करती है।

"....लेकिन आजकल साहित्य में भी क्षेत्रवाद और जातिवाद की आधुनिकता के नाम पर रोपाई की जा रही है । अभी तक मात्र मनुष्य जाति के आदर भाव की स्थापना नहीं की जा सकी है।"[1]

"पिष्टपेषित ज़हरीली बहसों और तथ्यहीन पूर्वाग्रहों से उबर के तो देखिये, आपको लगेगा जैसे हर कोई आपके शब्दों में अर्थ भर रहा है ,यानि कि अज्ञेय की बानी में जो अभी और रहा, वह कहा नहीं गया की तलाश कर रहा है।"[2]

"कह सकते है कि अभिव्यक्ति की नागरिकता का हमारे समय में अभूतपूर्व विस्तार हुया है ।यह भी याद करना चाहिए कि यह लोकतान्त्रिक विस्तार किसी नागरिक प्रयत्न या अभियान से, किसी राजनैतिक आन्दोलन से नहीं, तंत्र द्वारा संभव हुआ है ।यह विस्तार तंत्र याने टेक्नोलोजी का उपहार है। फिर भी उसका प्रसार और मान्यता दोनोंही बढे हैं इसमें सन्देश नहीं किया जा सकता है। अगर मर्यादित न हो तो हर व्यवस्था जिसमें लोकतंत्र भी शामिल है अराजक हो सकता है ।सोशल मीडिया पर ऐसी अराजकता देखी और पायी जा सकती है। एक तो सोशल मीडिया पर सोच विचार कर कोई बात ज़िम्मेदारी से कहने के बजाय आप दुनिया की हर चीज़ पर अपनी राय दे सकते हैं ।दूसरे का चरित्र हनन कर सकते हैं। लांछन और अतार्किक अभियोग भी लगा सकते हैं। ट्रोलिंग कर घटिया स्तर की भदेश छीछालेदर कर सकते हैं ।और यह उसका सबसे गर्हित और परेशान करने वाला पहलू है।"[3]

"सोशल मीडिया पर महज़ भेडचाल देखी जा सकती है। लोग या तो यहाँ दूसरों का कहा लाइक करते हैं या उन्हें भद्दी गली गलौज का शिकार बनाते हैं। राजनीति हो, धर्म या स्त्री, अज्ञ से अज्ञ इंसान इन पर धड़ल्ले से बहसबाजी करता है। बल्कि जो जितना कम जानता है उतना बढ़ चढ़कर बोलता है। लानत मलानत फेसबुक और ट्विटर की ख़ास अदा है। इनमें अद्तारीन अपशब्द औरतों के लिए आरक्षित हैं। औरत जो हो कवि दृलेखक,समाजकर्मी वैज्ञानिक दृमैनेजर, किसी को नहीं बख्शा जाता।"[4]

"कल रात फिर एक शब्द मर गया
उसी तरह जिस तरह भूख से एक आदमी मर जाता है
जिस तरह एक आदमी दम तोड़ देता है एक सड़क दुर्घटना में
बहुत कोशिश की मैंने उस शब्द को बचाने की
जिस तरह हस्पताल में एक मरीज को बचाया जाता है
पर पता नहीं क्यों वह शब्द मेरे सामने ही चीखते हुए मर गया
आखिर किसने मारा उस शब्द को
क्या कोई बस उसे कुचलते हुए निकल गयी थी
क्या किसी ने उसके पानी के ग्लास में ज़हर मिला दिया था
नहीं तो फिर कौन है उसका हत्यारा
पुलिस भी कैसे कर सकती है इस हत्या की जांच
लेकिन कल शब्दकोष पलटते हुए मैंने पाया
कई शब्द मरे पड़े हैं
तितलियों की तरह किताबों में
लेकिन शब्दों के मरने की कोई खबर नहीं है

---

[1] उस रास्ते मत जाइए, जितने लोग उतने प्रेम दृलीलाधर जगूड़ी, पृष्ठ 8–9
[2] साहित्य वार्षिकी, इंडिया टुडे, 2019 पृष्ठ 3, अंशुमान तिवारी
[3] अशोक वाजपेयी ,आज़ादी या अराजकता ,साहित्य वार्षिकी – 2017 पृष्ठ 8
[4] मृदुला गर्ग, आज़ादी या अराजकता ,साहित्य वार्षिकी, 2017 पृष्ठ 9

किसी अखबार में
टीवी से क्या उम्मीद करें
कहीं कोई शोकसभा भी नहीं
न कोई शोक सन्देश
न कोई शव यात्रा
न किसी की आँखों में आंसू यह कैसा समय है
कि एक शब्द के मरने पर पर सन्नाटा छा गया है
किसी पर कोई फर्क नहीं पड़ रहा है
सब निर्लिप्त हैं
जबकि एक शब्द मरता है
तो उसके साथ एक अर्थ भी मरता है
एक सभ्यता और संस्कृति भी मरती है
और उसके पीछे छिपा इतिहास भी मरता है "[1]

"अब अभिव्यक्ति के सामने सम्पादक नाम की दीवार कमज़ोर हो गयी है।बेशक सोशल मीडिया ने अभिव्यक्ति जबरदस्त अवसर उपलब्ध कराये हैं। पढने के नए तरीके विकसित हो रहे हैं, किताब या पत्रिका हो ज़रूरी नहीं कि भौतिक आकार में ही पढी जाए। आभासी पाठ लगातार लोकप्रिय हो रहे हैं। बड़े बड़े स्थापित पात्र पत्रिकाएं ऑनलाइन संस्करण निकाल रहे हैं। कई तो ऐसे हैं जो सिर्फ ऑनलाइन ही उपलब्ध हैं। और खूब पढ़े जाते हैं। इस तरह के प्रकाशनों में सम्पादक की सत्ता गायब नहीं हुयी है। उसने बस ऑनलाइन अवतार ले लिया है। विभिन्न पोर्टल्स की अपनी नीतियाँ हैं, प्राथमिकताएं हैं और वैसा ही पाठक वर्ग है। [2]

निस्संदेह इस आज़ादी के अपने खतरे हैं ,अपने लाभ और लोभ भी ।इस दुनिया में झूठ को सच की तरह परोसने और सच को झूठ बनाकर रखने के बेहद खतरनाक उदाहरण सामने आये हैं । यहाँ साहित्य या कला नहीं इंसानियत नहीं बल्कि लक्ष्य एक वर्ग को निशाना बनाया जाना होता है । किसी एक वर्ग का मखौल उड़ाया जाना होता है ।इसमें अपने को साबित करने से ज़्यादा दूसरे को बेईज्ज़त करने पर जोर रहता है। लेकिन जब तक इनका पर्दाफ़ाश हो उससे पहले ये बहुत तेज़ी से बहुत बड़े वर्ग का नुक्सान करने का माद्दा रखता है। "इन पोर्टल्स से अलग जो सोशल मीडिया है वह बहुत रोचक भी है और चिंताजनक भी खासकर व्हात्सप्प ग्रुप में जो होता है वह कई बार डरावने की हद तक पहुँच जाता है। ...इस हिस्सेदारी में प्रमाणिकता और ज़िम्मेदारी की कोई जगह नहीं होती ।आलम यह है कि आप कुछ भी कह दें ,चलेगा। वेनेंजुएला का वीडियो पश्चिमी उत्तर प्रदेश का बना दीजिये किसी फिल्म के सीन को बंगाल के किसी गाँव की वारदात बना दीजिये । विश्वास करने वाले सब हैं ,पूछ्ने वाला कोई नहीं। "[3]

यहीं यह आज़ादी खतरनाक हो जाती है और यह स्वतंत्रता तक पहुँचने के बजाये राह भटक जाती है। और तथाकथित लगामों के बावजूद आज भी खुलापन इतना है कि लगाम कहाँ कहाँ लगे और आश्चय तो ये कि कहीं कहीं लगामें ही बेलगाम होकर इन भेड़ों को हांकती नज़र आतीं हैं। "सोशल मीडिया सूचना और संवाद का सर्व सुलभ और मुक्त माध्यम है यह तो ठीक, लेकिन चिंता की बात ये है कि अपने सुलभ बल्कि लुभावने रूप के कारण यह एक मात्र ऐसे अवतार का भी रूप धारण कर लेता है। स्मार्ट माध्यम के युग में पढने की ही नहीं परस्पर बात करने की आदत भी कम होती जा रही है ।और यह संवादहीनता अकेली नहीं है, समाज में तेज़ी से वायरल होती जा रही बुद्धिहीनता के साथ इसकी सतत जुगलबंदी है। यह बुद्धिहीनता, विचारहीनता भारत से अमेरिका तक सायास रूप से रची गयी है। "[4]

---

[1] शब्द मृत्यु, विमल कुमार ,साहित्य वार्षिकी ,इंडिया टुडे– 2017 पृष्ठ – 17
[2] अंधाधुंध के राज में ,डॉ.पुरुषोत्तम अग्रवाल,साहित्य वार्षिकी, इंडिया टुडे 2017 पृष्ठ 9
[3] अंधाधुंध के राज में ,डॉ.पुरुषोत्तम अग्रवाल,साहित्य वार्षिकी,इंडिया टुडे 2017 पृष्ठ 10
[4] अंधाधुंध के राज में, डॉ.पुरुषोत्तम अग्रवाल,साहित्य वार्षिकी,इंडिया टुडे 2017 पृष्ठ 10

"किसी समाज के बुद्धि विरोधी समाज का इससे बड़ा प्रमाण क्या होगा कि बुद्धिजीवी धिक्कार के लिए बरता जाने लगा है, संसद में सांसद बुद्धिजीवी आतंकवाद जैसे शब्दों का इस्तेमाल करें। भारतीय समाज इस लिहाज़ से विलक्षण रहा है कि यहाँ का निरक्षर समाज भी विद्वानों गुणियों का सम्मान करता रहा है ।रावण और अन्य ऐसे राजाओं को अत्याचारी मानने के एक और भी कारण है कि वह अपने समय के बुद्धिजीवियों ऋषियों मुनियों को सताया करते थे। यह इस लिए भी दुखद लगता है कि अपनी सांस्कृतिक स्मृतियों के उलट हम अपनी शिक्षा पद्दति को बुद्धि विरोध की नर्सरी बनाए दे रहे हैं। बुद्धि और संवेदना की घोर उपेक्षा करते हुए राजनेता ,कॉर्पोरेट और ओपीनियन मेकर्स सब के सब स्किल डेवलपमेंट के गीत गा रहे हैं।[1]

"यहीं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को लोकतंत्र की बुनियाद माना जाता है किन्तु लोकतंत्र का मतलब सिर्फ संख्याओं तक सीमित नहीं होता है। लोकतंत्र संस्थाओं के बूते पर चलता है। लोकतांत्रिक मिजाज़ केवल भावनाओं को नहीं विवेक को भी महत्त्व देता है। केवल अपने को नहीं दूसरे के दुःख सुख के बा बारे में भी सोचता है। इस लिहाज़ से सोचें तो किसी हद तक सोशल मीडिया ने कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का स्पेस रचा ज़रूर है लेकिन इस स्पेस के भीतर जो हाल है उस पर फिलहाल तो यही पुरानी कहावत लागू होती है, अंधाधुंध के राज में गधा पंजीरी खाए"[2]

सोशल मीडिया की खूबी और खामी ये है कि ग्लोबल है ।इसमें यही खूबी भी है और खामी भी कि यह किसी एक पक्ष तक सीमित नहीं रहती ।इसके अपने फायदे और संकट है। फायदे यह, कि यह एक समन्वित राग है और संकट यह कि जिसे हम समन्वित कह या समझ रहे है असल में समन्वित नहीं प्रायोजित है। और उस संवेदनशीलता को भी तोड़ता है जिसकी साहित्य में सबसे ज़्यादा दरकार होती है। साहित्यकार की निगाह में यह स्थिति अराजक है "सोशल मीडिया भाषा का सबसे बड़ा ग्लोबल पब्लिक स्फीयर है। इसकी बहुस्वरता एक तरह की अराजकता का एहसास कराती है ।वह एक निर्बाध मंच है। वह मीडियम है और मैसेज भी । वहां हर आदमी एक लेखक है। हिन्दी साहित्य का उत्सव देखना हो तो उन नए –पुराने अनेक हिन्दी लेखकों को देखें जो फेसबुक पेज ब्लॉग ,वेबसाईट ,इन्स्ताग्राम, लिंक्डइन ट्विटर,व्हाट्सअप्प पर दिन रात कुछ न कुछ लिखते रहते हैं ।यहाँ आबाल वृद्ध स्त्री पुरुष और थर्ड जेंडर सब सक्रिय हैं ।"[3]

"लेखकों की यह नयी साइबर बिरादरी है। एकदम खिलंदड़ा,दो टूक कमेंटों और बेलौस ओपिनियनों से सुसज्जित यह एक मनोहर संसार है जिसमें निवेदन है ,अकाद है और सेल्फ का दर्पीला एहसास भी। यहाँ लेखन एक नित्य लीला है। बिरादरी में होते हुए भी ये लेखक नित्य अकेला है ।वह खुद ही लेखक , प्रकाशक,मार्केटर और हॉकर है। वह चौबीसों घंटे का इंटरैक्टिव लेखक है।"[4] ज़ाहिर है यहाँ बहुत सारे दवाबों के बीच लेखक लिख रहा है। दवाब ज़िंदगी के लिए कोई बड़ी चीज़ नहीं है। पहले भी होते थे होते रहेंगें मगर यहाँ जो दवाब है वह माध्यम के अपने दवाब है । मुकाबले में वह चौबीसों घंटे लगा है। ज्यादा से ज्यादा लाइक्स सीन व्यूज और बेस्टसेलर की होड़ उसे लगातार जगाये रखती है। यह जागरण कबीर का नहीं है

सुखिया सब संसार है खाबे अरु सोवै
दुखिया दास कबीर है जागे अरु रोवै

ये बाज़ार का जगराता है जहां महफ़िल हर घड़ी सजी रहती है 24ग7 । यह भी 21वीं सदी का और ग्लोबलाइजेशन का ही मुहावरा है अन्यथा आज से 25–30 साल पहले किसी से बात की होती तो 24ग7 कहने पर जानकार व्यक्ति सीधा 168 बोलता लेकिन आज हम इसका मायने समझते हैं अपलक। लगातार। बेरोकटोक। हर घड़ी। और इसने लेखक को भी जगा रखा है। और वह दुनिया या जगत कल्याण के लिए नहीं करवटें बदलता रहता है उसका मकसद है सोशल मीडिया के प्रतियोगी जगत में खुद को किसी भी हाल किसी भी कीमत पर विजयी बनाना या साबित करना।

---

[1] अंधाधुंध के राज में ,डॉ.पुरुषोत्तम अग्रवाल,साहित्य वार्षिकी,इंडिया टुडे 2047 पृष्ठ 10
[2] अंधाधुंध के राज में ,डॉ.पुरुषोत्तम अग्रवाल,साहित्य वार्षिकी,इंडिया टुडे 2017 पृष्ठ 10
[3] लेखन अब फास्ट फूड और लेखक परफ़ॉर्मर–सुधीश पचौरी, साहित्य वार्षिकी,इंडिया टुडे 2017 पृष्ठ 10
[4] लेखन अब फास्ट फूड और लेखक परफ़ॉर्मर–सुधीश पचौरी, साहित्य वार्षिकी,इंडिया टुडे 2017 पृष्ठ 10

इस मुकाबले एक हद तक तो दौड़ा जा सकता है ,मगर यह नहीं रुकता इसके लेवल बढ़ते जाते हैं ।दौड़ जारी रहती है। इस जगत (सोशल मीडिया) की निरर्थकता का बोध होते हुए भी यह लेखक को चैन से नहीं सोने देती ।यहाँ मुहावरा एक ही चलता है "तेरी कमीज़ मेरी कमीज़ से सफ़ेद कैसे। "या फिर 'नेबर्स एनवी ऑनर्स प्राइड'। यह नए मूल्यों के प्रत्यारोपण का समय है। किसान को लगता है मैं बो रहा हूँ, कवि को लगता है मैं बो रहा हूँ। पर बुवाई उसकी होती है जिसका विज्ञापन सबसे ज़ोरदार होता है। यहाँ वोट काबिल को नहीं मुकाबिल को दिया जाता है। कवियों की कविताओं को भी देखें तो वहां ज़माने की यह चिंता और चिंतन छान छान कर आता दिखाई भी देता है।

गीत चतुर्वेदी अपने संग्रह 'न्यूनतम मैं' में इसे अपनी तरह से एहसास करवाते हैं –

मैं अपनी नहीं ,किसी और की राजनीति हूँ
मैं किसी और का गुप्त एजेंडा हूँ
मेरे होने भर से कोई अपने हित साध लेगा
वह मेरा ही अहित होगा
मैं अपना नहीं किसी और का नाम हूँ
नरक की नागरिकता के लिए मैंने आवेदन नहीं दिया था ।
मुझे किसी और के टिकट पर यहाँ भेजा गया ।[1]

सोशल मीडिया एक अलग लोक है। जैसा पहले कहा यहाँ 24ग7 सब चलता है। लेकिन इस दुनिया की बड़ी विडंबनाएँ हैं। यहाँ मेले भी बहुत हैं, ठेले भी बहुत और झमेले भी बहुत। और इस जगत में मौलिकता बड़ी मुश्किल से मिलती है। व्हाट्सएप्प का दूसरा नाम 'ठेला– ठेली' भी मान सकते हैं। यह एक ऐसी दुनिया जहां लोग खुद का कम लिखते हैं दूसरे के भेजे को आगे सरका रहे हैं। मतलब मेरे पास जो 2 ने भेजा मैंने 3–4–5 को भेज दिया और 4 या 3 ने भेजा उसे 2 व् अन्य को ठेल दिया। यहाँ अपने विचार व्यक्त करने की फुर्सत ही नहीं है क्यों दर्जनों ग्रुप्स और सैकड़ों कॉन्टेक्ट्स में से ढेरों नोटिफिकेशन आपका दरवाज़ा खटखटा रहे होते हैं। शब्दों की जगह चिन्हों और प्रतीकों ने ले ली है। यहाँ तक कि भावनाओं के स्तर पर भी मरना हो या परना (परिणय) या जन्मदिन या वर्षगाँठ, जीत या हार सबके सिम्बल्स हैं। सुधीश पचौरी लिखते हैं "सोशल मीडिया के लेखक की यात्रा 'सेल्फ' से 'सेल्फी' तक है। इस दुनिया का वाद है तुरतावाद। तुरंत लेखन, तुरंत पोस्टिंग यानि प्रकाशन, तुरंत प्रतिक्रया, तुरंत प्रति–प्रतिक्रया और ट्रोल करने वाली खाप पंचायतें। यहाँ सेल्फ समाज से बड़ा है। कड़ी आत्म समीक्षा, आत्म परीक्षा और कठोर आत्मानुशासन कम 'जोई सोई कछु गावै' का भाव प्रबल रहता है। यहाँ का पाठक सच होते हुए भी फेक सा लगता है। यह साहित्य संचार की शोर सर्किटिंग है।"[2]

इस दौर में बड़े पशोपेश में है उम्र के 5–6–7 दशक पार कर चुके साहित्यकार । अभी वह टीवी को लेकर ही परेशान थे ,फेसबुक को लेकर ही चिढ़ते थे लेकिन अब व्हाट्सअप्प,इन्स्टा और ट्विटर के आगे वह चित्त हो गए मालूम पड़ते हैं । हिन्दी साहित्य के किसी भी दौर में किसी साहित्यकार ने इतने रूपान्तरणों को इतने युगों को संभवतः नहीं देखा होगा ।विष्णु खरे मानते है दृ"नेट ने कविता ही नहीं सारे अक्षर और मुद्रण को कागज़ की क़ैद से मुक्त कर दिया है ।चीनी छापाखाना और गुटेनबर्ग ने धातु प्रिंटिंग प्रेस के बाद लिखित शब्दों के विश्व में ये ऐसी महाक्रान्ति है कि जिसके सारे आयाम समझना अभी हमारे यहाँ शुरू ही नहीं हुआ है, य।पि हम संसार के दूसरे सबसे ज्यादा नेट इस्तेमाल करने वाले राष्ट्र है ।"

दरिया का सारा नशा उतरता चला गया
मुझको डुबोया और मैं उबरता चला गया
वो पैरवी तो झूठ की करता चला गया

[1] न्यूनतम मैं, गीत चतुर्वेदी, टिकट पृष्ठ 21
[2] लेखन अब फास्ट फूड और लेखक परफ़ॉर्मर–सुधीश पचौरी, साहित्य वार्षिकी, इंडिया टुडे 2017 पृष्ठ 10

लेकिन बस उसका चेहरा उतरता चला गया
हर सांस उम्र भर किसी मरहम से कम न थी
मैं जैसे कोई जख्म था भरता चला गया
मंजिल समझ के बैठ गए जिनको चाँद लोग
मैं ऐसे रास्तों से गुज़रता चला गया
हद से बढी उड़ान की ख्वाहिश तो यूं लगा
जैसे कोई परों को कतरता चला गया
दुनिया समझ में आई मगर आई देर से
कच्चा बहुत था रंग उतरता चला गया
बसीम बरेलवी

इसी तरह साहित्य की एक एक कविता आज भी प्रतिरोध की बानगी पेश करती है ।और यह सिर्फ आज के प्रतिरोध में खड़ी हो ऐसा नहीं है, यह मानव जाती के पूरे इतिहास और समस्त मान्यताओं पर भी एक सिरे से प्रश्न चिन्ह खड़े करती हैं । यह खुद को ही नहीं खुदा को भी अच्छी तरह जांचती परखती है ।रजनी अनुरागी की कविता 'बुद्ध अगर तुम औरत होते' बुद्ध के पूरे वजूद को जैसे झकझोर देती है ।

बुद्ध अगर तुम औरत होते
तो इतना आसान नहीं होता गृह त्याग
शाम के ढलते ही तुम्हें हो जाना पड़ता
नज़रबंद अपने ही घर और अपने ही भीतर
हज़ारों की अवांछित नज़रों से बचने के लिए
और वैसे भी मान अगर होते तुम
राहुल का मासूम चेहरा तुम्हें रोक लेता
तुम्हारे स्तनों से चुआने लगता दूध
फिर कैसे भी कर पाते तुम
पार कोई भेरे वीथी समाज की ।
घने जंगलों में प्रवेश करने
और तपस्या में तुम्हारे बैठने से पहले ही
शीलवान तुम्हें देखते ही स्खलित होने लगते
जंगली पशुओं से ज़्यादा सभ्यों से भय खाते तुम
ब्राह्मण तुम्हारी ही योनि में करते अनुष्ठान
और क्षत्रिय शस्त्रास्त्र को भी वहीं मिलता स्थान
वैश्यो ने पानी की तरह बेचकर वैश्या बना दिया होता तुम्हें
और ये कहने में कोई गुरेज़ नहीं है मुझे
कि शूद्रों का भी तुम होते आसान शिकार
औरत के मामले में सब होते हैं पुरुष
अभिशप्त जीवन जीने को जब होते मजबूर
तब बताओ कैसे मिलता बुद्धत्व तुम्हें
और तुम कैसे कहल;आते बुद्ध
चौहद्दियों से परे जाने पर
क्या तुम्हें निरपराध होने की गवाहियाँ मिल जातीं

कितने ही ऋषियों मुनियों की तपस्या भंग करने का लगता अभियोग
बाँध कर उसी बोधिवृक्ष के साथ कर दिया जाता जेते जी डाह संस्कार
एक गाली बनकर रह जाता तुम्हारा नाम
भयावह क्रूरता के आगे ठगा सा रह जाता सम्यक ज्ञान
हवा हो गया होता बोधिवृक्ष और बुद्ध का नाम
और न कहीं होता बुद्धं शरणम् गच्छामि
बोलो बुद्ध अगर तुम औरत होते
तो क्या इतनी आसानी से मिल जाता
तुम्हें निर्वाण का अधिकार

—रजनी अनुरागी साहित्य वार्षिकी इंडिया टुडे

साहित्य और अन्य कलाओं की यही बानगी आज के इस मीडिया प्राभावित दौर में भी कला और कलाकार का प्रतिरोध का काम कर रही है ।ऐसे दौर में कलाप्रेमियों के दो धड़े स्पष्ट सामने आ गए हैं ।एक जिनके लिए कला रोजी रोटी का ज़रिया है और व्यावसाय है और दूसरे वे जो कला को जीवन के लिए एक हथियार के रूप में इस्तेम्नाल करते हैं ।

कबीरा खडा बाज़ार में लिया लुकाठी हाथ ।
जो घर जारै आपना चले हमारे साथ ।।

कला प्रेमियों को दूसरा धड़ा आज भी कबीराना अंदाज़ में बाज़ार के खिलाफ खडा है और विज्ञापन संस्कृति के खिलाफ सच को सच कहने का साहस प्रदर्शित करता आया है । युवा कवि पंकज चतुर्वेदी की कविताओं में कवि का वह तेवर साफ़ साफ़ दिखाई देता है जहां वह सत्ता या वर्चस्ववादी वर्ग का विज्ञापन बनने से साफ़ इनकार कर देता है ।यहाँ भाषा को बहुत पारदर्शी रखना चाहता है —

हत्यारे को
हत्यारा ही कहा जाना चाहिए
चाहे वह प्रधानमंत्री हो या राष्ट्रपति
या मुख्य न्यायाधीश या सेना प्रमुख
हत्यारा सिर्फ हत्यारा होता है
बाकी उसकी पहचान ह्त्या के गुनाह को
छुपाने के लिए होती हैं
ह्त्या कई औजारों से की जाती है
इसमें कलम की नोंक
विचार की नोंकशामिल है
हत्यारे का इतना ही कहना काफी है
हिन्दुओं को अपना गुस्सा निकालने का मौक़ा दिया जाना चाहिए
या
कश्मीर में सेना को पूरी छूट दे दी गयी है
या वे अगर हिन्दू लड़की को उठाते हैं तो हम 100 मुसलमान लड़कियों को उठा लेंगें
फिर देखिये आग और तलवार का खूनी खेल
हत्यारे सड़क पर हैं और संसद में
वे हर संस्थान में मौजूद हैं

इन सबसे हत्या के गुनाह ख़त्म नहीं हो जाते
न हत्यारे की शिनाख्त छुपती है
हत्यारे को हत्यारा कहना

भाषा के सही इस्तेमाल की पहली सीढी है ।(भाषा का सही इस्तेमाल दृपंकज चतुर्वेदी)

इसी तरह पंकज चतुर्वेदी अपनी एक और कविता में हमारे वक्त की असहमतियों के बढ़ते स्वरुप और तर्कहीनता के मायाजाल को बेपर्दा करते दिखाई देते हैं ––

वह कविता नहीं थी
सुबह का वक्त था
वे चार थे
सियासत की बात चली
मैंने कहा –नफरत और हिंसा की आक्रामक राजनीति हो रही है
उनमें जो सबसे बुजुर्ग था उसने मुझे डपटते हुए पूछा
हिंसा कहाँ हो रही है
कहाँ है नफरत ?
मैंने जवाब दिया
कहीं नहीं
चारों तरफ प्यार का माहौल है
इस पर वह चीखते हुए बोला
माहौल खराब कर रखा है साला
कुछ लोग खालिस कुतूहल से यह तमाशा देखने लगे
एक भद्र जन ने मुझे निकल जाने का इशारा किया
सुबह के वक्त वह मुक्तिबोध की कविता 'अँधेरे में' नहीं थी
अन्धेरा उसमें से निकल कर सड़क पर छा गया था
और उसका लफ्ज़ साला मेरे बहुत करीब आ गया था ।

मीडिया और ज़्यादा मज़बूत शक्ति बनकर उभरे सोशल मीडिया या न्यू मीडिया के दौर यह साहित्य ही है जो मीडिया और बाज़ार की चुनौतियों के खिलाफ आम जन की आवाज़ बनकर खडा है। ऐसा नहीं है ,कि लेखक मीडिया से अप्रभावित रहा हो, पर प्रतिरोध का स्वर उसकी भाषा में साफ़ साफ़ पढ़ा जा सकता है। जहां उसका प्रभाव पड़ा है वहां उसकी भाषा दृ मूल्य दृ विषय और चिंताएं बदली हुयी ज़रूर नज़र आतीं है लेकिन वहां भी उसकी एक अलग चेतना और चिंता के साथ चिंतन का कलेवर साथ दिखाई देता है। निस्संदेह साहित्य और कला की दुनिया में भी मीडिया के प्रभाव है लेकिन वहां भी वह उस प्रवाह में बहा नहीं जा जा रहा बल्कि उस संस्कृति के खिलाफ डट कर खड़ा है जो हर चीज को बिकाऊ और दिखाऊ बनाने पर आमादा रहती है । कला के बाज़ार और बाजारूपन के प्रतिरोध में खड़े होने की जिद ही उसे मीडिया के कला आयामों के बीच भी उसे एक अलग पहचान देती है ।

❖◆❖